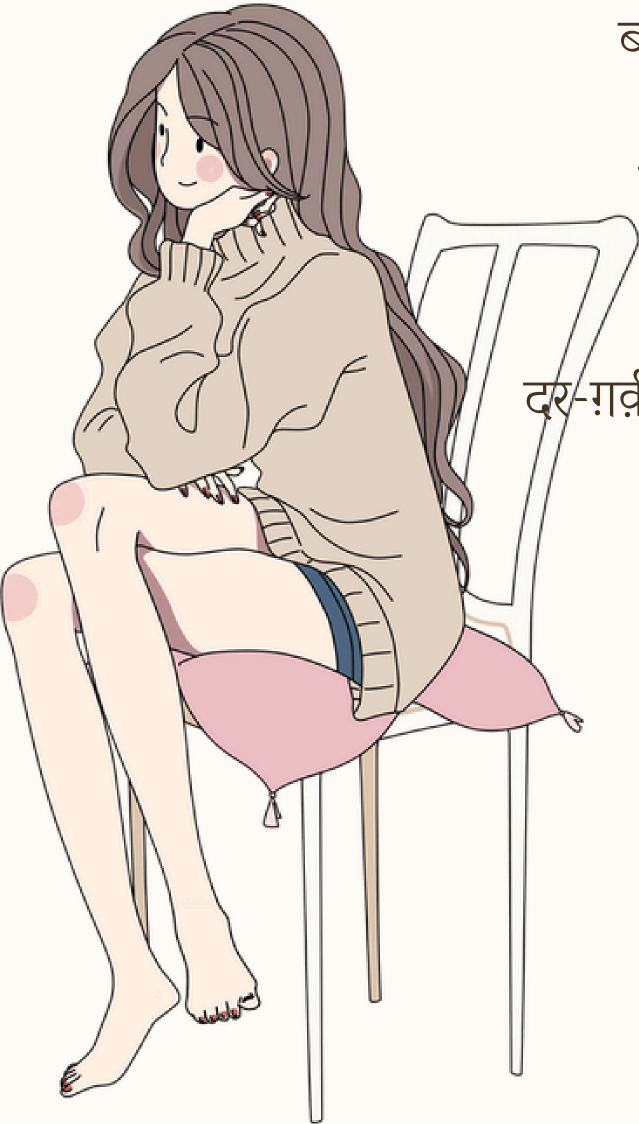
प्रयास

इरशाद

प्रयास

इरशाद

امی کے لیے



मैं लिख रहा हूँ।
क्या लिख रहा हूँ?
जो दिख रहा है।
क्या दिख रहा है?
कौन जाने?
बारुद के उड़ते धुएँ में
हर घड़ी मैं,
साँस थामे मर रहा हूँ!
जब मर रहा हूँ,
क्यों यहाँ हूँ?
दर-ग़र्क़ आब-ए-उफ़्ताद मैं,
हाथ में अंगारे लिए,
कुछ कर रहा हूँ।
क्या कर रहा हूँ?
लिख रहा हूँ।
क्या लिख रहा हूँ?
जो दिख रहा है।
क्या दिख रहा है?
कौन जाने?

फ़ेहरिस्त-ए-मज़मीन

इंसान

सब दिया है उसने
कुदरत से जिंदगी तक
दानिश की शर्मिंदगी तक
सवाल बस इतना था की,
थोड़ी सी मासूमियत भी दे देता
सब कुछ तो दे दिया,
बस थोड़ी सी इंसानियत भी दे देता...
बहरहाल
शैतान ने बड़े प्यार से चुनी थीं
क्या वो आवाजें तुमने भी सुनी थीं?
उन आवाजों में, एक दर्द का एहसास था,
उन आवाजों में, कुछ खास था।
हालांकि,
वो खासियत सिर्फ हम जैसों के लिए है...
क्योंकि इन बड़े बड़े शहरों में,
जहां हाथों से रगों तक सिर्फ ज़ाम होता है,
ऐसी आवाजों का आना,
आम होता है।
अगर तुमने थोड़ा सा ध्यान दिया होता,
तो तुम्हे मालूम होता
की...
वो आवाजें दो तरह की थीं।
दो तरह के लोगों की थीं।
पहली आवाजों में
हंसी थी, खिलखिलाहट थी।
तो दूसरी ओर



दर्द था, चिल्लाहट थी।
जो लोग खुश थे, बेदर्द थे,
और जो बचे थे, खौफ से ज़र्द थे।
वो लोग जो चिल्ला रहे थे,
जिनमे हौंसला कम था
जिनके दिलों में ग़म था,
ये लोग कौन थे?
उनकी वो चीखती चिल्लाती आवाजें
किसे पुकार रही थीं?
किसे ढूंढ रही थीं?
उन आवाजों के सन्नाटे में
कुछ माएं थीं
जो दम घोंट देने वाले बारुद के धुंए में
अपनी औलादें तलाश रही थीं।
कुछ बाप थे
जिनके जीवन अब अभिशाप थे।
जिनके बच्चे,
मंज़िल पाने गए तो थे
मगर लौट ना सके...
उन आवाजों में कुछ माशूक थे
जिनके इश्क,
एक अनचाही जंग में फना हो गए।
ये उस बेपनाह दर्द की आवाज़ें थीं
किसी के छूटने का दर्द...

दिल के टूटने का दर्द...
खुदा के रुठने का दर्द...

ये आवाजें उन लोगों की थीं
जिनका उन वजूहात से कोई वास्ता न था
जिन वजूहात की वजह से
उन्हें आवाज़ बनने पर मजबूर होना पड़ा
इन मासूम मजलूमों की खता थी
की इन्हे कुछ बातें नही पता थीं...
इन्हे नहीं पता था कि,
ईश्वर एक शुतुरमुर्ग है,
वो अपना सर शर्म से छुपा तो सकता है
मगर किसी को बचा नही सकता
इन्हे नहीं पता था कि,
इंसाफ़ एक फिल्मी फलसफा है
इन्हे नहीं पता था कि,
संत की शक्ल में रावण
आज भी किसी सीता की ताक में है,
इन्हे नहीं पता था कि,
हुकूमत-ए-जम्हूरिया
चाहे कितनी ही साफ हो
आखिर,
है तो हुकूमत ही
उसका जो निगहबान है
आखिरकार शैतान है।
इन आवाजों का
इस बात से कोइ वास्ता नहीं
की जिस बंदे ने उनके अपनों की जान ली
वो खुदा का था या राम का...
जो यह पता चला भी
तो न काफी था, ना काम का।

वक्त का कमाल है,
इसने परिवर्तन क्या किया थोड़ा,
राम और रावण में कोई अंतर ही नहीं छोड़ा।
जो कहना है तुम्हें
ब्रह्म,
अहुरमाज़,
अल्लाह
गॉड
या जेहोवाः
वो
निराकार हैं
निर्विकार हैं
निर्निमेष हैं
निर्विशेष हैं
अव्यय हैं
अस्पृश्य हैं
शब्दहीन हैं
रुपहीन हैं
संक्षेप में
नहीं हैं
या शायद हैं,
यकीनन इनके लिए तो नहीं हैं
ये वैचारिक संघर्ष के निष्कर्ष में
उत्पन्न कुंठाओं का किस्सा है
ये हर उस इंसान पर लाज़िम है
जो इन दुविधाओं का हिस्सा है।
किसी की ज़िंदगी में दर्द है
और किसी को उसका एहसास भी नहीं

बस यहीं आकर,
रुप्य स्वनि का
दर्द ध्वनि का
अस्तित्व स्वीकारते हैं।
हम नाहक़ ख़ुदा को धिक्कारते हैं।
जब इंसान के इंसान होने पर रोक है
मज़हब अफीम नहीं,
नोवीचोक है
हैवानों को जीतते देख परेशां होना,
या अल्लाह!
मुझे ना-ग़वार है खुद का इंसाँ होना...

एहसास



एक बेहोश ज़माने का,
ख़ुद-फ़रोश जवानी का,
सुख़न-परदाज़ हूं मैं तो,
एक बिखरी कहानी का।
मेरा मैं खुद नहीं,
मैं हुं...
मैं शायद नहीं...
अँधेरा है,
रात है,
वक्त भी साथ नहीं मेरे;
दरवाज़े तो क्या,
रोशनदान से फ़ारिग़ है...
इस शहर को क्या आबाद करुं।
पर्दा-नशीं हूं ख़ुद,
तुझे क्या आज़ाद करुं।
आज नश्तर सी इस हवा में,
अपना वजूद थामे चल रहा था,
मैं तन्हा था,
मगर,
उन्हें खल रहा था।
समझने लगा हूं मैं,
उफक़ और शीशे में ढलते,
उन सितारों का दर्द।
कहीं दूर अनजान से रास्ते पर सुनी मैंने...
कसते से हाथ से एक दबती सी चीख...
कोई साया था, नज़र तो आया था।

वक्त... जो कहीं ठहरा
ठिठककर
एक तारीक कोने से,
रोशनी ढूंढता एक हाथ दिखा...
आहिस्ता से बहता ख़ून उसके साथ दिखा...
दूर हवा के झोंकों में सिसकता लिबास,
दिखी मुझे... एक मासूम की शक़्ल में इंसानियत की लाश
तभी देखता हूं,
ख़ून और आंसुओं के एक समंदर ने,
मेरे नीचे की जमीं बहा दी
लड़खड़ाया,
बैठ गया...
नहीं...
शायद गिर गया
कौन ज्यादा गिरा था,
मैं? या ज़माना?
पता नहीं।
आवाज़ और अल्फाज की,
एक दूसरे से उस बेरुखी ने मुझे
सोचने पर मजबूर कर दिया,
मौत के मुहाने पर,
उसने देखना चाहा मुझे
और...
दर्द की एक लहर ने उसे मुझसे और दूर कर दिया
अधखुली बेजान आंखों में
मैं उसे तलाश रहा था
मैं मौजूद था...
हां...

उस बेइंतहा तकलीफ में भी उसका वजूद था
मगर कब तक?
कब तक?
मैंने थाम लिया... कांपते से हाथों से एक कांपता सा बदन
हुआ... एहसास...
महसूस कर पा रहा था मैं,वो उखड़ती सांसें!
सर्द चांद, मरती आहें!
समझ न सका की कैसे?
कोई इन मासूम सांसों को रोक कर मर्द हो गया...
और... खौफ से जज़्ब वो बदन मेरे हाथों में
ज़र्द हो गया...
स्याह पन्नो पर पढ़े मैंने
उसके दमान पर उठते सवाल।
हां...
जाली अल्फाजों के साए में पोशीदा,
ज़ेहन के कफस से झांकते कुछ एहसास दिखे
मैंने एक मां की आंखों में मरने की हसरत देखी!
वालिद के कांपते हाथ
और
कातिल की होती इबादत देखी...
“दर्ज तो है तुम्हारा दर्द तफसीलों में”
अपनी आंखों से मगरिब की इनायत देखी...
इंसाफ के चादर से ढकी ज़ुल्मत की इमारत देखी...
झूठ के पुलिंदो में दफ़्न उसकी आयत देखी...
मैंने देखा की बिकते हैं,
कई मुंसिफ मिज़ाज लोग यहां,
शिर्क़-ए-हक़ीक़त के खून से लबरेज़ शमशीर लिए,
मैंने गाज़ी होते दौलत देखी...

ये जंग...
ईमान की क़ब्र और शोहरत को ज़िंदगी में है,
जो हिला सके बा’असर लोगों की सियासत,
इतनी औकात कहां गदा की हसरत में है,
एक रात मेरे हाथों में दम तोड़ा था उसने,
मैंने अपनी बाहों में मरती इंसानियत देखी...
आवाज़ को सीने में दफ़्न होते देखा
रुह को जज़्बात का कफ़न होते देखा...
उस रात...
वो अधखुली बेजान लाल सुर्ख़ आंखें,
मेरी रुह से जाने क्या कह गईं?
तुम... कैसे सह गईं?
ये सवाल करने में उसकी क़ब्र तक कई बार गया,
करता भी...
जो गर होता ईलाज...
आंखों से बहते इस पानी का,
एक बेहोश ज़माने का,
ख़ुद-फ़रोश जवानी का,
सुख़न-परदाज़ हूं मैं तो,
एक बिखरी कहानी का...

दिल करता है की आज कुछ बोलूँ तेरे आगे,
पर क्या? इस सवाल के होने पे चुप हूं।
दानिश के तो कई दर हैं, कोई खोलूं तेरे आगे,
मैं अक़्ल-ओ-ख़िरद के खोने पे चुप हूं।
की आंसू और ख़ून जो न कह पाए तुझे,
की मीज़ान-ए-अद्ल जो न सह पाए तुझे,
की दर्द अफ़ज़ा हुआ पर न पहुंचा तुझ तक,
हलक़ बंद है... गीत ग़ायब...
दूर अंधेरे में किसी रुबाई के रोने पे चुप हूं।
ख़ुद रिज़वान शर्मिंदा है तेरे मिज़ाज पर इरशाद,
तेरे ख़यालों से आगे मैं तेरे होने पे...

चुप हूँ



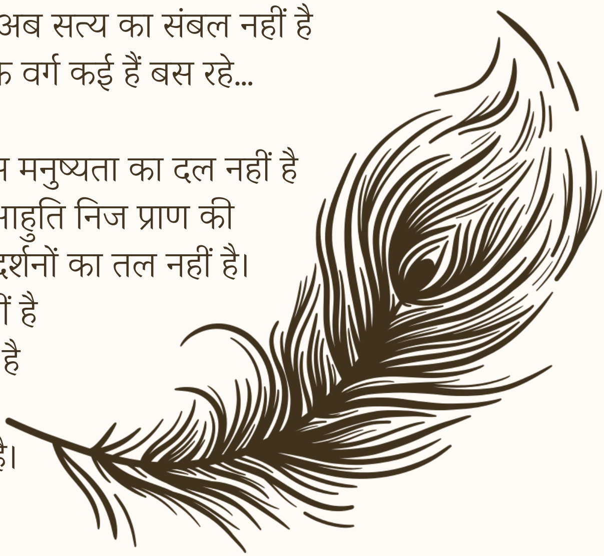
कान्हा

शनैः!

कृष्ण की मुस्कान वह समर के आरब्ध पर
आज क्यों अस्पष्ट है आख्यान वो प्रारब्ध पर?
अधीरता से देखता हूं सृष्टि परावार को
नैकशेय बुद्ध हो घूमते हैं समष्टि के उपकार को
धर्म था की त्यज्य था निजप्राण भी कारुण्य पर
सम्राट ही अब तोड़ते हैं साम्राज्य के आधार को।

मदांधता कि प्राचीर पर, धृष्टता की है पताका,
कुरु हुए हैं राट और मातुल बने हैं न्यायदाता।
अन्यायसंगत न्याय' हैं और कुंठित तर्क हैं।
कूपमंडूक विद्वता है या यह है नपुंसक दासता?

धर्मसंकट है विकट, यह धर्म ही संकट में है
राजृषियों की इस सभा में अब सत्य का संबल नहीं है
अधर्मियों और कुकर्मियों के वर्ग कई हैं बस रहे...
यदि नहीं है...
तो पंथों से कटकर मरी इस मनुष्यता का दल नहीं है
निकृष्ठता के यज्ञ में देते आहुति निज प्राण की
मनुष्य ही को मार दे, यह दर्शनों का तल नहीं है।
इस व्यूह का कोई हल नहीं है
द्यूत खेल है अब छल नहीं है
जल रहा संसार सारा
बस तृष्णता है, जल नहीं है।



दृश्यता एक कल्पना है, अदृश्य हूं हर श्वास में
भाग्यरश्मि ढूंढता हूं पश्चिमी आवास में
पूर्ण का परिचित मगर शून्यता पहचान है
निस्तेज सी निष्प्राण देह, निःशब्द सा एक गान है,
भूमि का अपमान मैं कुछ पुरुष यह व्यवधान है,
रिक्त मन देखता यह शक्ति का अवसान है।

निज देह में निःस्तब्धता, अश्रुपूरित, विवर्ण सा
आग्नेय मैं, एक पितृद्रोही! हेमंत के एक पर्ण सा।
इंद्र का अधिकार वह महासिंधु का मह ज्वार भी,
कर्म की विपरीत धारा, बंद होते द्वार भी,
दर्मज्ञ दृष्टा देखता है बच रहा बस द्वेष है
क्रोध बन कर्तव्य सा, एक क्रंदित आवेश है।
चैतन्य की एक डोर थामे, अनभिज्ञ था मैं दंभ से,
साक्षी हां रहा किंतु तिमिर का आरंभ से।

नीचता की बात करते, ये मन तुम्हारे नीच हैं
यम के आवरण में ढके पर वासना के बीच हैं
धर्म बस है यही की भेद ही अन्याय है।
कामुकता और भ्रांतियाँ सब अंतःकरण में बीज हैं-
एक रक्तिम निर्झरी में डूबते अवरोध के,
धर्म के आह्वान पर जलकांत के उस क्रोध के,
रुदन के, मृत्यु के और अंतरिम प्रतिशोध के,
शत्रु बने हैं आज जो उस मर चुके न्यवग्रोध के।

कोई आश्रित है नहीं और कोई किसी पर 'सर' नहीं है।
दृष्टा जो थे सत्य तो फिर कोई भी तो 'पर' नहीं है।

आज समर अंतर्निहित है और कौरव निज विचार,
जो अनुज के प्राण साधे, सर्प है वो, नर नहीं है।

अल्पज्ञानियों की धृष्टता का भला कोई अंत था?
अरे! यातना जो थी सनातन तो सनातन संत था।
विनम्रता और सौम्यता का हि तो तन निमित्त है
है शील, धीरज, संतोष, प्रेम तो सनातन चित्त है।

विवेक का वह प्रज्वलन,
घेरे आशंकित मेघ सघन,
कान्हा! बस तुम्हे समर्पित यह क्रंदन



सूरजमुखी

दुआर-अलशम्स का सहर से मिलना
चाँद का ख़ुर्शीद की क़िस्मत से जलना
यूँ आना वो उसका
यूँ ग़ुलों का खिलना
ये शाम का ढलना
ये नज़रों का मिलना
लम्हा दर लम्हा
फ़लाह ओ फ़लाह!
अब चाँद की ख़्वाहिश है सूरज सा दिखना



माँ

अर्जुमंद-ए-इश्क़ तो फिरते हैं परिंदे भी,
फ़ज़ल वालदेन की मुहब्बत का भी कम मिला हमको।
मीरास तक क़ुदरत से आतिश-ए-ग़म मिला हमको,
मज़ीद-हयात भी तुम कह दो तो यह होगी ज़ुल्मत
मदफून-ए-ग़म ज़ीस्त मेरी, अज़ाब मिरी आक़िबत
इमरोज़, इक़दाम-ए-ख़ुदकुशी, कल अलविदा, फिर ताज़ियत
दौर-ए-गरांख्वाबी में रह गए क्या माएने अब जीत के?
मख़मूर होने दो मुझे, कल अलविदा, फिर आख़िरत
मर गई पाकीज़गी, वो गया दौर-ए-मुराद,
आग क़ौमों को लगी है, कल अलविदा, फिर मुहाजरत
बाद भी नश्तर चुभे! यह कैसी इक्सीर है?
मेरा वजूद अस्ल-ए-फ़साद, कल अन-अलहक़ फिर अब्दियत।
दिलदोज़ सारे कैफ़ियात, यह स्याह होता आसमाँ
अजीब-तर ख़याल मेरे, अजीब-उल-वज़ आशियां
जितने देखे ख्वाब मैंने शब के आगोश में,
सेहर होते ही बने वो ज़ीनत-ए-दीवार-ए-ज़िंदां।
हैं मगर कुछ ख़्वाब बाक़ी, कुछ हैं बाक़ी आरज़ू
रफ्ता-रफ्ता सारे कूँचे हो गए बर्ग-ए-पुर-अफ़शां।
हमसे किनाराकश रहे, अहल-ए-दीन-ओ-अहल-ए-ज़माँ
उनके बातिल जो मेरे आगे यूँ आश्कार खड़े हैं।
एहसासात की सरगुज़श्त ही उनकी दास्ताँ-ए-मर्ग है,
तब ज़लज़ले में बच गए थे,आज कार-ए-ख़ार खड़े हैं।
क्या करेंगे बात आप ईमान कि शैतान से?
क़ुर्बान क़ौमों को कर यहाँ अख़बार लड़े हैं।
आइए फिर, बुने तसव्वुर सब्ज़-बाग़ों से हसीं,
मानो, वो दुश्मन नहीं चंद यार खड़े हैं।

इस पार खड़े हैं, कुछ उस पार खड़े हैं,
वो सदियों के लड़ते अब हार खड़े हैं।
इस सरज़मीं पर बीतीं हैं सदियां उखव्वत की,
सैलाब-ए-बुग्ज़ में फ़ाख़िर शाख़सार खड़े हैं।
ख़्वाब-ए ख़ुश, बेहतर अज़ वाक़ियत-ए बद अस्त
हम दर-हक़ीक़त मक़ाम पर ग़मख़्वार खड़े हैं।
फ़िज़ूल जागते हैं जब हुकूमत से बेदाद मुक़र्रर है,
मुजरिम हमारी मौत के, बने ख़्वाश्तगार खड़े हैं।
और मैं इस शोर में जागता हूँ कि आज माँ देखूँगा,
डर ज़माने का थामे ये क़दम बेज़ार खड़े हैं।
और मैं इस दर्द में जागता हूँ कि आज माँ देखूँगा,
सब ख़्वार-ओ-रुसवा-ए-सर-ए-बाज़ार खड़े हैं।
मैं इमरोज़ जागता हूँ की आज माँ देखूँगा,
सर-ए-राह एक सरहद कुछ तार खड़े हैं।

बनी-नौ-ए-इंसाँ का ख़ून लिए आँखों में,
बर-अक्स ज़ूर-ए-हशमत के बेख़ार खड़े हैं।

वही खड़े हैं जो उसकी रज़ा में नूर-ज़ार खड़े हैं,
बाक़ी तो 'इरशाद' सब बेकार खड़े हैं।

निज़ाम

बुझा दी शम्म अक़ीदत की यूँ सल्तनत ने तैश में
सबर जाए अगर जाए शर जाए या सर जाए

हवा में राख-ए-जमा’ उड़ते मिलेंगे जाने कितने ना-तुवाँ
सीम-ओ-ज़र-ए-उमरा नहीं कि निज़ामत तक ख़बर जाए

मुस्किरात बेबस दिखेंगे बिल-मुक़ाबिल दीन के
शर्त गर्चे है की ख़बरें मंज़र-ब-मंज़र जाए

मशालों के अँधेरे में तरक्की से बेघर हुए
नौ-ए-इंसाँ का हाल ये कि आहट हो तो डर जाए

आग-ओ-ग़ुल-ए-फ़िरक़ा फैला है आधी रात सा
निगाह-ए-मुज़्तरिब ऊपर सेहर आए वो घर जाए

ज़ोम-ए-क़ुव्वत-ए-मिल्लत फ़रेब-ए-आदमियत है
ख़ुमार-ए-झूठ में ग़रक़ाब ये जाए तो किधर जाए

ये कश्ती बहर-ए-आज़ार-ओ-दुश्वार-ए-ज़िंदगानी में
इस ईद डुबे ब’ईद डुबे उफ़क़ से पार उतर जाए

तेरी ‘इरशाद’ दुनिया से आरज़ू-ओ-इक़तिज़ा क्या है
जो कल वो मरती हो बला से आज मर जाए



ख़ुदा



घड़ी किसकी बज रही है कुछ ही दूरी पर कहीं,
गिन रही है वक्त को या की जाने की घड़ी।

कौन है जो साथ है, कौन कितना दूर है?
ख़ुद खुदा लगता मुझे क्यों नशे में चूर है?
दिखता नहीं, सुनता नहीं, या सर ही उसका ख़स्फ़ है?
अस-समद का ज़म है शायद अश-शबूर-ए-वस्फ़ है।

क्या ग़ज़ब है मुल्क में जम्हूरिया का हाल भी
कुछ को मिली बस पर्चियाँ कुछ के नुचे हैं बाल भी,
अब तो शायद डर भी ख़ुद डरने लगा इंसान से,
हक़-ए-हयाह कुश्ता हुआ दस्तूर के बा-वस्फ़ है।

अँधेरा ही गर देखना है, क्या बुरा की आँखें बंद हैं,
बंद रहती हैं रहें, मैं क्या करूँगा खोलकर?

मैं चुप हूँ, मैं चुप रहूँगा भी, मैं क्या करूँगा बोलकर?

मदफ़ून हैं ताब-ओ-क़वी-ए-अशराफ़ के बोझ से
क्या करूँगा 'इरशाद' अब ऐसी किताबें खोलकर?

मैं चुप हूँ, मैं चुप रहूँगा भी, मैं क्या करूँगा बोलकर।

ख़ाम-ख़याली

ये दिल धड़क रहा है तुम्हारे बग़ैर भी
हर दिन गुज़र रहा है गुज़ारे बग़ैर भी

रश्क में राज़ी रहे या किज़्ब पे ज़िंदा
ये इनसान मर रहा है मारे बग़ैर भी

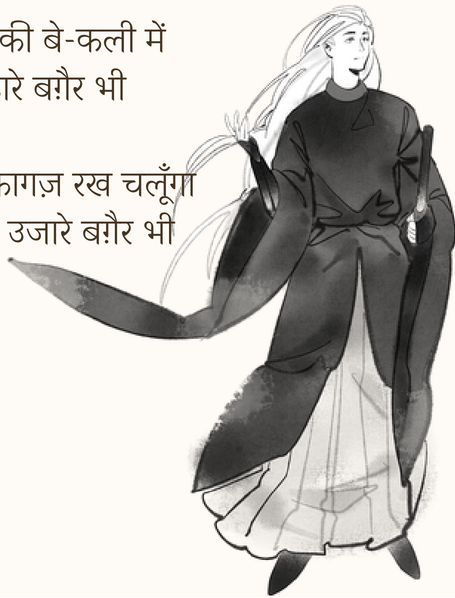
सोचेंगे आँ-जहानी वो जो जा चुके हैं
लो चल रही है दुनिया हमारे बग़ैर भी

इलाही ये सबब है सब दर्द का जहाँ में
दिखने लगा है हम को निहारे बग़ैर भी

तज्वीज़ दे चुके हैं सालार-ए-कोहना को
कुछ बिस्तरी मुजाहिद विचारे बग़ैर भी

मौजों से मार खाते होने की बे-कली में
चंद ख़्वाब तर रहे हैं सहारे बग़ैर भी

वक़्फ़ में 'इरशाद' चंद कागज़ रख चलूँगा
कलम तो लिख ही लेगी उजारे बग़ैर भी



सुबह-ओ-शाम बा-ज़ोर रहने लगा है अब
मेरे बातिन में बहुत शोर रहने लगा है अब
सारे ख़ुदाओं और उनके सौदागरों में नहीं
इल्हाद में जो ग़ुल-शोर रहने लगा है अब
झूठ ये की असबाब-ए-ऐश बड़ी शय हैं
सच ये कि दिल में चोर रहने लगा है अब
सोचने लगा है ख़ुद शायद यही वजह हो
वो मा'सूम था सर-ज़ोर रहने लगा है अब

शोर

वक्त चारागर था उसे मुंतक़िम कर लिया
क्या बचा था फिर कोर रहने लगा है अब
वुजूद-ए-हाशिये पे इतना ही बदल बरपा
कम-बख़्त था कम-ज़ोर रहने लगा है अब
कुछ इस ज़िंदगी से उकता गया है शायद
दिल जहान से उस छोर रहने लगा है अब
उम्मीद पर ज़िंदा है इस ज़िंदां में इरशाद
दोस्ती की ख़्वाह में गोर रहने लगा है अब

संसद और सांसदों के नाम

वो जो दर्द सह रहा है मेरा अपना है
वो जो दर्द कह रहा है मेरा अपना है

क़वद से कट मर रही इन मिल्लतों में
जो ख़यालों में बह रहा है मेरा अपना है
रहम-ओ-करम और आसरे की ताक से
वो जो किनारे रह रहा है मेरा अपना है
फ़रह में हर शय को है दिन मुअय्यन
जो ग़मों का मह रहा है मेरा अपना है

ज़ुल्मत-कदा में जी रहा है मर रहा है
यूँ अपने को दह रहा है मेरा अपना है
आदमी क्या है कुछ लम्हे हैं ठहरे हुए
जो हम तरह रह रहा है मेरा अपना है
मुश्तबा है मुजरिम है अपने ही घर में
जो ये ज़ुल्म सह रहा है मेरा अपना है

संगदिल निज़ाम और जाबिर मंदूब को
जो क़ातिल कह रहा है मेरा अपना है
बिसात-ए-मामूर-ओ-ख़्वाहिशात के
वो जो संग ढह रहा है मेरा अपना है
दाम से किसान का अर्ज़ का रहट से
वो जो ख़ून बह रहा है मेरा अपना है

ये राज-ए-राम हशमत-ए-हाशमी में
जो लावज़ूद रह रहा है मेरा अपना है
ऐ बदज़ुबान तू अहद-ए-तक़दीर सुन
ये जो सपना कह रहा है मेरा अपना है
लिए ख़्वाब गुंचों के ख्वाहिशें भँवरों की
ये जो तक़रीर कह रहा है मेरा अपना है

काले ये क़ानून सारे हैं शरीफ़ी के सितम
वो जो सितम ये सह रहा है मेरा अपना है

मजलिस-ए-शुर्फ़ा रही 'इरशाद' तन्हा रहा
वो जो दिल की कह रहा है मेरा अपना है



या रब फ़लक-ए-दूँ ज़रा कुछ कम चाहता हूँ
मैं तुझ से खुर-ओ-ख़्वाब हमाँ दम चाहता हूँ

तौक़-ओ-क़फ़-ए-क़ातिल पे जमे दाग़ों में लहू
निक़मत के लिए क़स्द-ए-मुसम्मम चाहता हूँ

कर ख़ून गिरफ़्तार नहीं होता भला क्यों
क़ातिल तुझे इंसाफ़ मुक़द्दम चाहता हूँ

तू जो बना ख़ामोश-तमाशाई है खड़ा
मैं तेरे लिए मौत बा-अज़्लम चाहता हूँ

हर रोज़ जिगर-दोज़ तमाशे कर रही है
मैं लोक-सभा गैर-मुनज़्ज़म चाहता हूँ

मैं तेरे लिए नार-ए-जहन्नम चाहता हूँ
सरदार तुझे क़ार-ए-जहन्नम चाहता हूँ

ना ख़ून का गुस्सा है न ख़ूनी से गिला है
सरदार से माफ़ी मैं पए हम चाहता हूँ

‘इरशाद’ वो ये तल्ख़ बयानी याद रखे
ये चाहता हूँ मैं यही क्या कम चाहता हूँ

दर्द है

और जहाँ था वो,
सदियों से,
वहीं है।
और, नहीं है,
तो हाँ मगर इंसान को
इस टूटती तक़दीर में,
हर ख़लिश के बाद का एहसास नहीं है।
अपनी क़िस्मत के फटे पन्नों को
सीने के लिए
जा रहा है वो आदमी,
पाँव में छाले लिए।
हाथों से पत्थर तोड़ता है
घर तुम्हारा जोड़ता है,
की उसके छप्पर जा सके,
उतरन दिवाली के लिए।
इन उदास आँखों में,
ज़रा झांकिए मेरे हुज़ूर,
बेजान जाती रोशनी है
सूर्य जैसी आकृति।
और तुम्हारे क़ौसैन से
कुछ ही दूरी पर है पड़ी,
एक जर्ज़र मक़बरे सी,
काँपती है संस्कृति।
जिनके फीते काटते हो,



उनकी नींव, उसका खून है।
जिनके जूते चाटते हो,
उनके नाम उसका खून है।
खून बहा,
बहता रहा...
आहट तक करता नहीं,
छोटी जात का था,
बह गया,
साहस तक करता नहीं।
आग लगी, लगती रही,
जले छप्पर छोटी जात के,
बाढ़ आई, आती रही,
बहे छप्पर छोटी जात के,
सूरज की तपती छाँव में,
जो खेलते मासूम थे,
निमोनिया से मर गए,
बच्चे वो छोटी जात के।
प्रतिरोध होता ही रहा,
वो बाप रोता ही रहा,
कौन सुनता था वहाँ,
इस संस्कृति के शोर में,
बँधी पैसों की डोर में
दब गई वो बात भी।
दब गया वो बाप भी।
फाइलों में हो गई बंद
एक और पद-दलित पुकार...
है जो कारागार में,
उस सभ्यता की चीत्कार

सुनाई देती है मगर,
कोई भी सुनता नहीं।
वेदना ही घट चुकी है,
क्यूंकि आह इतनी घुट चुकी है।
आह जो निकली मगर...
कौन सी है?
किसने, किससे, कब कही है?
मेरे दोस्त, मेरे जानी, मेरे भाई!
ख़ुदा की खैरियत का शुक्रिया...
की तुम्हें नहीं है!
पर,
यह मत कहो की दर्द नहीं है।
क्यूँकि ...
दर्द है!
और जहाँ था,
वो सदियों से
वहीं है!

लाल सलाम

इंक़लाबी बन मेरी जाँ, मौत को आरुस कर,
है बग़ावत ज़िंदगी, ज़िंदा है तू, महसूस कर,
चूस कर तेरा लहू जो जी रहे आराम से,
फड़फड़ाएँगे जभी टकराएँगे अक़्वाम से,
लड़खड़ाने दे इन्हें, तू डगमगाने दे इन्हें,
देखते हैं, कैसे ये बचते हैं इस कुहराम से,
सिंह बन, जयदेव बन, राह-ए-अदम की शान बन,
तान ले बन्दूक फिर से, जा गिरा संसद में बम,
आज बन अश्फ़ाक़ फिर से, आज से आज़ाद बन,
जा जलाकर राख कर, ये जाबिर-ए-जाह-ओ-हशम,
तोड़ दे कोह-ए-गिरां, अब छोड़ ये दर्द-ओ-अलम,
उठ खड़ा हो, खाक कर तू आज ये कू-ए-सितम,
फिर गिरेंगी गोलियाँ, जैसे गिरी थी बोस पर,
इंतिख़ाबी ख़्वाब टूटे, इंकलाबी दोस कर,
इंक़लाबी बन मेरी जाँ, मौत को आरुस कर,
है बग़ावत ज़िंदगी, ज़िंदा है तू, महसूस कर।



राहें

जब कभी तुम सोचना
सोचना ज़िंदा हो तुम
हैं बहुत बातें यहाँ
इंसाफ़ की,
उम्मीद की,
तुम मगर हर ओर से
आती हुई आहें सुनो
और देख लो कैसे यहाँ
क्या हो रहा है
कौन है
क्या कर रहा है
कौन है
जो कह रहा है
सोच कर राहें चुनो
राहें चुनो जो जानती हों
रोते बिलखते बाप को
वो रो रहा है
कह रहा है खो गया है
खो गया है भार जैसे
हाँ सच कहा वो भार था
पर भार था तो
क्यों लिया था
एक दिन ऐसे ही मानो
कोई दे गया था हाथ में
हाथ में वो रो रहा था



रो रहा था?
रो रही थी?
भार था? या भार थी?
वो रोना चुभता नहीं था
आज पर चुभ रहा है
चुप!
वो ज़रा सा सो रहा है
रोज़ कुछ सीखता था
क्या पता...
अब खो गया है
वो ढूँढता उसे रो रहा है
उस रोते बिलखते बाप की
काँपती बाहें चुनो
तुम सोचकर राहें चुनो
चुन सको तो सोच कर
ऐसी अफ़वाहें चुनो
जो उन माँओं की हों
जिनकी गिरफ्त में हो यकीन
यकीन जो जाता नहीं
की अगली घड़ी में उस तरफ़ से
आ ही जाएगी हँसी
वो घंटी बजती नहीं
हँसी है की आती नहीं
आती है तो बस दुआ
जाती है बस बद्दुआ
जानते हो क्या हुआ?
जो हुआ वो कब हुआ?

कैसे हुआ?
नहीं पता?
कहा था...
सोच कर राहें चुनो
राहें चुनो जो जानती हों
जानती हों प्यार को
इंसान को,
ऐतबार को,
ऐतबार जो था कभी
हर किसी पर
हर किसी का
आज तो बस दुश्मनी है
हर किसी की
हर किसी से
तुम चुन सको
तो वो राह चुनना
जो दोस्ती की प्यार की हो
हर किसी से
एतबार की हो
हाँ, वो जो तुम्हारा दिल है ना
वो टूटेगा मगर
रुकना नहीं
वो जो तुम्हारे ख़्वाब हैं
सब बिखरेंगे मगर
रुकना नहीं
वो क्या है की दुनिया बड़ी है
इतनी बड़ी है की क्या कहूँ
यहाँ, कोई अपना नहीं

या यूँ कहो की सब ही हैं
वो क्या है ना
एक सफ़र में कई दफ़ा
अपनों से माफ़ी माँग लेना
कोई और माँगे
शायद ना भी माँगे
दे ही देना
ज़िंदगी क्या है?
सफ़र है!
और सफ़र में,
कई रास्ते हैं
या कहो की इस सफ़र के
कई रास्ते हैं
जो लोग चलते हों जहाँ
तुम हो सके तो
चलना वहाँ
जहाँ से आती हो सदा
प्यार की
और जब थक जाओगे
कुछ देर रुकना
साँस लेना
जब घड़ी भर साँस लो
तब सोचना
ज़िंदा हो तुम



सफ़र मेरा

कहीं तो आ मिलूँगा
तुम तक सफ़र में हूँ मैं।
फिर कैसे मैं जियूँगा
कि ये सफ़र है तो हूँ मैं।

तुमसे ये रोशनी है
तुम हो तो ज़िंदगी है
तुम ही तो हर ख़ुशी हो
तुमसे ही हर ख़ुशी है
मंज़िल तुम्हारा घर है
उसकी डगर में हूँ मैं
तुम करना प्यार जग से
मैं करूँगा सिर्फ़ तुमको,
मैं तुमको ही करूँगा
तुम तक सफ़र में हूँ मैं।

मुझ पर कहाँ सुख़न है
ग़ुरुर कैसा शुऊर कैसा
वो सब जो शाईर गुज़रे
मुझे उनसे शुरुर कैसा
देखो! फिर भी मैं जल रहा हूँ
ये कैसी फ़िक़्र में हूँ मैं?
तुम पढ़ना सब की ग़ज़लें,
मैं पढ़ूँगा सिर्फ़ तुमको
मैं तुमको ही लिखूँगा
तुम तक सफ़र में हूँ मैं।



मैंने जो भी कुछ किया है
सबका सवाब हो तुम
मेरी हर दुआ के बदले
उसका जवाब हो तुम
मैं उसको चुनूँ या तुमको
ये कैसे भंवर में हूँ मैं?
तुम चुनना सब जहाँ को
मैं चुनूँगा सिर्फ़ तुमको,
मैं तुमको ही चुनूँगा
तुम तक सफ़र में हूँ मैं।

गर न चल सको अकेले
बस बोल देना मुझको
मैं यूँ ही चल चलूँगा
तुम तक सफ़र में हूँ मैं।

तुम कहना जो है कहना
मैं सुनूँगा सिर्फ़, तुमको,
मैं कुछ नहीं कहूँगा
तुम तक सफ़र में हूँ मैं।

रहने दो

अपनी मौत का बवाल रहने दो
इन सवालों को सवाल रहने दो

जमहूर में हो जन्नत में नहीं हो
कमाल देखो ये मलाल रहने दो

फ़िज़ूल है इन मजमों में चीखना
इन ख़यालों को ख़याल रहने दो

क्यों ढूँढते हो लाशों में ज़िन्दगी
ये फ़लसफ़ाना मक़ाल रहने दो

इरशाद वो है वो देखता होगा
जो अंदर है वो उबाल रहने दो

परिंदे



मैं सोचता हूँ ये,
इन उड़ते परिंदों को,
जब आसमाँ देखता होगा...
क्या सोचता होगा?

ये मेरी हैरत है,
कि नीम की शाखों पे,
जो कोयल वो बैठी है,
या मेरी खिड़की से लगे छज्जे पे,
वो बुलबुल जो रहती है,
ये सांझ ढलते ही,
चंदा निकलते ही,
कहीं तो जातीं हैं।

मैं सोचता हूँ ये,
परिंदे सब,
क्या रोज़ मिलते हैं?
आज मिलकर ये,
क्या कर रहे होंगे?
क्या कह रहे होंगे?

ये मेरी हैरत है,
कि इनके घर कहाँ होंगे?
कितनी दूर होंगे ये,
अपने अपनों से,
ये यहाँ हैं पर,
इनका मन कहाँ होगा?
क्या ये फिर से लौटेंगे?
यह मेरी हैरत है।

यह मेरी हैरत है,
कि जब ये लौटेंगे,
कौन रहगुज़र होंगे?
कि कैसा सफ़र होगा?
कि मंज़िल कहाँ होगी?
कैसा कारवाँ होगा?

मैं सोचता हूँ ये,
इन उड़ते परिंदों को,
जब आसमाँ देखता होगा...
क्या सोचता होगा?

आज़ादी

हाँ वाक़ई आज़ाद हो तुम!
भूलने की आज़ादी है तुम्हें!
वाह क्या आज़ादी है तुम्हें,
वाह क्या आज़ाद हो तुम!
अपने हुजरों में क़ैद रहकर,
जवाबदेही की जगह तुम,
सवालियों को ढूँढना,
ये है आज़ादी असल!
आज़ादी-ए-इंतिख़ाब!
शायद यही है वो, जिसे,
दुनिया कहती है वहम!
जंग-ए-आज़ादी के बाद।
अब ये ज़िंदगी ही जंग है,
आधे तो इसमें मर गए हैं!
जो जी रहे हैं, जी रहे हैं,
घोंटकर अपना ही दम!
बेजा है हिन्दोस्तान को,
आराइश-ए-ज़ोम-ओ-ज़लम।
दर-पर्दा, फ़रेब-ए-आदमी में,
लिए शक्ल-ओ-सूरत आदमी की,
जम्हूरिया-ए-हिन्द में,
बरक्स ख़्याल-ए-हिन्द के,
भेड़ें ज़रा ज़्यादा हैं, आदमी कम।
पर क्या है ख़्याल-ए-हिन्द भी?
नख़ला है रेगिस्तान में।
पेश-ए-नज़र जहाँ कुछ नहीं है,
सिवा, ग़ैज़-ओ-तर्स-ओ-अलम।
तो ये हाथ में झंडे लिए,

फिर किस ख़ुशी से शाद हो तुम?
या तो ख़ामोश हो, मदफ़न रहो,
बहर-ए-ख़ूँ-ए-ज़ाती-ख़्वाब में।
नहीं अपनी ही ख़लवतगाह के,
पंखे से रस्सी बांधकर,
झूलने की आज़ादी! है तुम्हें!
वाह! क्या आज़ादी है तुम्हें!
वाह ! क्या आज़ाद हो तुम!



ज़ात

तुम कहाँ हो क्या पता कि हम कहाँ हैं
जो जहाँ है वो वहाँ पर बेज़बाँ है

खैर-बाशद पूछते हैं जाँ-सितानी
मेरा होना जाँ-गुज़ा कोह-ए-गिराँ है

दफ़्तरों के काग़ज़ों में दर्ज हैं जो
बेतमन्ना ही मुअय्यद इम्तिहाँ है

मग़रब-ओ-मशरक़ में आख़िर फ़र्क़ क्या है
ज़ात की ज़ाती सभी बे-ज़ारियाँ हैं

ख़ून से महँगी है जो उन बोतलों में
वो शराबें सब हमारी राज़-दाँ हैं

बेघरी इरशाद घर में चुभ रही है
मेरी हस्ती मेरी गर्दिश में निहाँ है



तमाशा

तू तुर्फ़ा-तमाशा मैं सिर्का-ज़बीं हूँ
तू ख़ंदाँ-ज़बीं है मैं क़ल्ब-ए-हजीं हूँ

चमकती दमकती ये दुनिया तमाशा
मैं तब भी सही था मैं अब भी सही हूँ

कभी ख़ुद को देखूँ कभी ख़ुद को वारूँ
ये इतना तो पागल मैं अब भी नहीं हूँ

मुझे क्या हुआ था मैं क्या कर रहा था
मैं तब बे-यक़ीं था मैं अब बे-ज़मीं हूँ

ये कैसे मैं समझूँ कि क्या हो रहा है
जहाँ से चला था मैं अब भी वहीं हूँ

यूँ इरशाद आख़िर मैं क्यों रो रहा हूँ
मैं दुनिया नहीं हूँ मैं क्यों ऐब-बीं हूँ

सितारों में है बाक़ी वो तराविश भी बड़ी है
ये सीनों में दहकती है वो आतिश भी बड़ी है

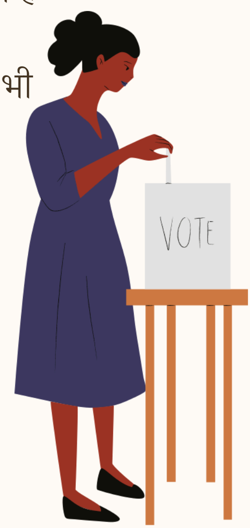
हैं जा **जम्हूर** के मारे क़तारों में जनाज़े

रहें ज़िंदा ये इतनी सी गुज़ारिश भी बड़ी है

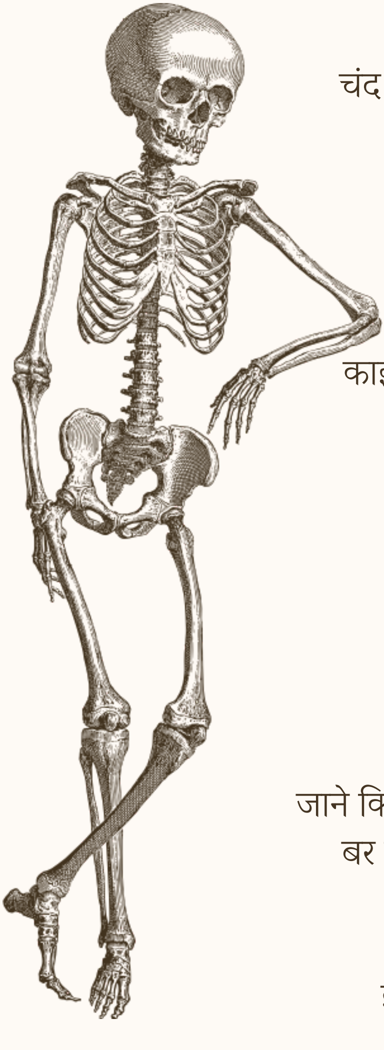
जवाबों से मुझे क्या मैं सवालों से दुखी हूँ
मुझे अपनी जहालत की परस्तिश भी बड़ी है

नहीं अल्लाह से मुझको शिकायत कोई ऐसी
मैं काफ़िर भी हूँ उसपर मेरी ख़्वाहिश भी बड़ी है

तनाक़ुज़ तेरी अलकस से नहीं इरशाद कुछ भी
ये तेरा बूद ये ज़िंदा ये फ़ाहिश भी बड़ी है



पुल



मायूसी में चहकते दरिया से ऊपर,
थाम के मायूस को जो पुल बना है,
ये वही है जिसपर से चलकर कभी,
एक आदमी, इंसान से कुल बना है,
है उस दर्या के उपर जो बह रही है,
इस ज़मीं को उस ज़मीं से तोड़ने को
है पुल मगर बेताब शायद,
चंद तबक़े चंद साये चंद कागज़ जोड़ने को,
ख़ामोश बहती नम हवा है,
उफ़ुक से ऊपर धुंधलका है,
उसी पुल की रेलिंग से झुककर
इक शख़्स है जो तन्हा खड़ा है
थामे खड़ा है ज़र्द लोहे की सलाख़ें,
काइनात ने थाम ली हो साँस मानो दर्द की,
ये दर्या भी उससे कह रहा है
खामोश क्यों सब सह रहा है?
निगाहें तह-ए-दरिया
मदफ़न ही रहतीं
क्या बुरा था?
रोशनी उम्मीद की परछाइयों में
गुम ही रहती क्या बुरा था?
आप भी अब राह चलते राज़ देखें
जाने कितने रास्तों में कितने पुल तन्हा खड़े हैं?
बर सरराह किसी रोज़ ऐसे ही किसी पुल से
उस इंसान को देखें या उसे गिरता देखें
मेरी आप से विनती है उसे गिरने देना
इस जीने में क्या जीना है उसे मरने देना



ख़्वातीन

है हर गोशा लबरेज़-ए-रंग-फ़ुज़ूँ,
डर भी रहा होगा ख्यालों के दरूँ,
क्या बताओगे गर ये तुमसे मैं पूछूँ,
जो अपने इरादों के सैद-ए-जबूँ,
ख़ला भी होती तो क्या बुरा था?

यक-रंग वो बैठी है तनव्वो में घिर,
देरीना रंगत ये अज़ली भी है फिर,
क्या बताओगे गर ये तुमसे मैं पूछूँ,
जो है पिंहाँ-ए-कुहल-ए-ज़वाहिर
उस ग़म-ए-गीती में क्या बुरा था?

मुमताज़ है तन्हा है शामिल भी है
कम है पर ज़ात से कामिल भी है
क्या बताओगे गर ये तुमसे मैं पूछूँ,
जब यक़ीन-ए-दीदा-ए-दिल भी है
ख़ुद फ़िरोज़ होती तो क्या बुरा था?

कौन समझता है ग़ुल-रुख़ों की ज़बानें
हाथों की मिट्टी की चूल्हों की ज़बानें,
क्या बताओगे गर ये तुमसे मैं पूछूँ,
वो सुनती है नक़्शीं फूलों की ज़बानें,
ख़ुद को जो सुनती तो क्या बुरा था?

अब्सार में इशरत कि आज़ाद है वो,
ये उम्मीद कि शिद्दत से आज़ाद है वो,
क्या बताओगे गर ये तुमसे मैं पूछूँ,
भार-ए-लाज-ओ-ज़ीनत से आज़ाद है वो?
जो आज़ाद वो होती तो क्या बुरा था?

रियाज़त से भरा ये निबाहों का ज़माना,
दूर अस्त है बेपर्दा निगाहों का ज़माना,
क्या बताओगे गर ये तुमसे मैं पूछूँ,
जो ज़ेर-ए-पुर-उम्मीद आँखों का फ़साना,
वो कह भी देती तो क्या बुरा था?

है ये भी सवाल जो आता है यहाँ,
आख़िर कौन किसे बनाता है यहाँ,
क्या बताओगे गर ये तुमसे मैं पूछूँ,
बीच त’आक़ुब-ए-लाला-ए-रुख़ाँ
कशिश-ए-शा’री में क्या बुरा था?

हे राम

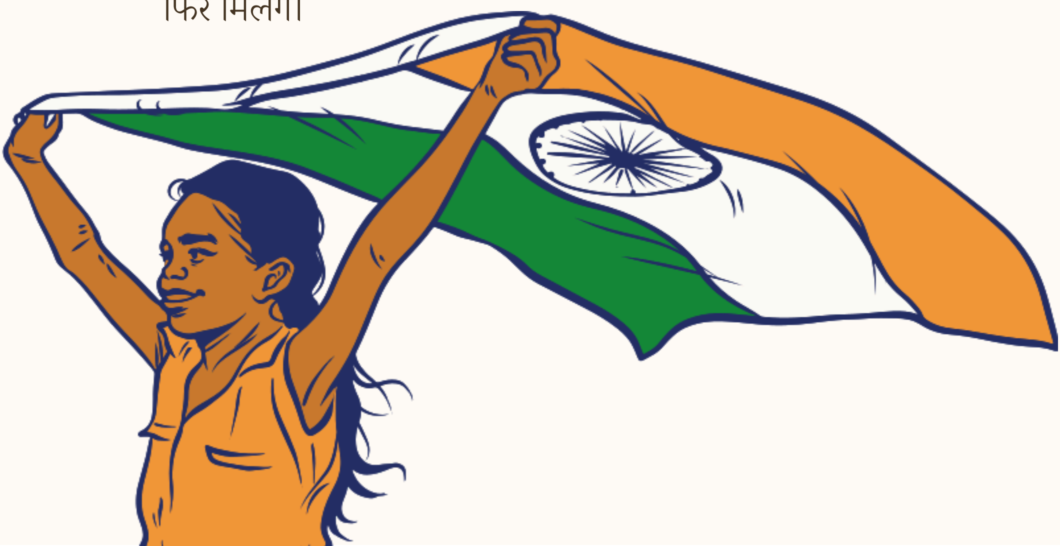
जागो !
सूरज खड़ा है द्वार पर,
अब शयन का मोह त्यागो!
छोड़ो रुदन की वक़्त है...
वक़्त है, उम्मीद भी है...

चमन में प्यार के सब रंगीन ग़ुल फिर खिलेंगे
डूबते जो हैं भंवर में साथ वो पुल फिर मिलेंगे
जो ठान ले इंसां तो छीने आख़िरत से ज़िंदगी
मिलेंगे पीरों से सनम संतों से क़ुल फिर मिलेंगे

फिर मिलेंगे, हाँ यक़ीनन फिर मिलेंगे...
फिर मिलेंगे...

इंशा अल्लाह

फिर मिलेंगे।




समाप्त



About Me

मैं शायर नहीं हूँ, मैं क्यों लिखता हूँ?

तो सर्द-मेहर-ओ-बेहिसी में गुज़र कर लूँ?

या रोता है कोई तो निगूँ-सर कर लूँ?

तो... लिखता हूँ...

क़फ़सज़ाद भी ख़्वाब-ओ-आरज़ू-ए-परवाज़ रखा जिसने,

उस परिंदे की सानिहात, उसका जुनूँ लिखता हूँ।

बाज़ मुहज़बीन जिस अफ़वाह-ए-तहज़ीब से ज़द हैं,

उस जदीद तमद्दुन की जफ़ा-ओ-फुसूँ लिखता हूँ।

ख़ुमार-ए-उरूज में भूले आज़ार-ओ-ख़्वार वतन के,

जब 'एहसास' फ़रामोश बनें दार-ओ-मदार वतन के।

दरीं दौर-ए-सियाह-फ़ी-क़स्द-ए-कलाम अंदाज़ेम,

बराए मसाफ़-ए-ज़िंदगी अंदेशा-हा-ए-गुना-गूँ लिखता हूँ।

और बरसता है अब्र-ए-सियासत से पानी की तरह,

मेरे क़ुर्ब-ओ-जवार से बहता है, वो ख़ूँ लिखता हूँ।

कसीर अफ़सानों से जो हासिल थे बेअंदाज़ 'इरशाद'

एक दवात चंद पन्नों में वो आँसू खो देता हूँ,

मैं शायर नहीं हूँ, कलम थामूँ तो रो देता हूँ।

-Puneet Singh Ratnu 'Irshaad'

